Shodh Sangam Patrika
E-ISSN: 3049-0707, Volume 2 | Issue 4 | (Oct – Dec 2025)

'कजरी' का लोक सौन्दर्य

डॉ. प्रियंका कुमारी
संगीत शिक्षक, उच्च माध्यमिक विद्यालय, थरूआही, लौकही, मधुबनी

सारांश

'कजरी' एक ऐसी लोकगायन विधा है, जिसके श्रवण से मन-मस्तिष्क प्रफुल्लित हो उठता है और तन-मन थिरकने को बाध्य हो जाता है। कजरी वर्षा-ऋतु का सर्वाधिक प्रचलित लोकगीत है। चारों ओर फैली हरियाली को देखकर मन-मयूर कजरी गीतों के साथ नृत्य कर झूमने को विवश हो उठता है। इन कजरी गीतों का लोक-साहित्य और उसकी लोक-रसयुक्त धुनें अंतर्मन को भरपूर आनंद से भर देती हैं। कजरी के साहित्य में क्षेत्रीय बोलियों का सुंदर समावेश होता है, जो गीतों को कोमलता प्रदान करता है, वहीं इसकी धुनों में प्रयुक्त बोलियों की सुगंध बसी रहती है। इन्हें सुनने के बाद कोई भी श्रोता आनंदित हुए बिना नहीं रह सकता। वर्षा के आनंद से अभिभूत साहित्य के साथ-साथ इनमें नायक-नायिका के श्रृंगार-वर्णन के अतिरिक्त भगवान शिव की आराधना एवं भक्तिपरक साहित्य भी प्रचुर मात्रा में मिलता है। कजरियाँ उपशास्त्रीय और लोक-दोनों शैलियों में गाई जाती हैं। कजरी गायन की परंपरा भारत में अति प्राचीन काल से चली आ रही है। सांस्कृतिक दृष्टि से भारत प्राकृतिक सौंदर्य से परिपूर्ण देश है। जीवन के समस्त उपादानों की भाँति मृदु एवं मधुर गीतों का गायन यहाँ के जनजीवन का अभिन्न अंग रहा है। प्राचीनतम ग्रंथ ऋग्वेद में लोकगीतों के बीज रूप संकेत प्राप्त होते हैं। प्राचीन साहित्य में जिन गाथाओं का उल्लेख मिलता है, उन्हें लोकगीतों का प्रतिनिधि कहा जा सकता है। इस प्रकार प्राचीन काल से ही भारत में लोकसंगीत की समृद्ध परंपरा विद्यमान रही है।

मुख्य शब्द: कजरी, लोकगीत, वर्षा-ऋतु, पावस, सावन, हरियाली

मूल आलेख

सावन और कजरी का अत्यंत प्राचीन संबंध है। वर्षा-ऋतु के संबंध में संस्कृत कवियों ने बड़ी भावपूर्ण कल्पनाएँ की हैं। महाकवि कालिदास ने 'ऋतुसंहार' में पावस को एक राजा के रूप में चित्रित किया है। उनके अनुसार, जल की फुहारों से भरा हुआ, विद्युत की पताका फहराता हुआ पावस धरती पर राजसी ठाठ-बाठ के साथ अवतरित होता है।

आदिकवि वाल्मीकि ने वर्षा का चित्रण इस प्रकार किया है-

"नीलोत्पलदलश्यामाः श्यामीकृत्वा दिशो दश ।
विमदा इव मातङ्गाः शान्तवेगाः पयोधराः ॥
जलगर्भा महामेघाः कुटजार्जुनगन्धिनः ।
चरित्वा विरताः सौम्य वृष्टिवाताः समुद्यताः ॥"[1]

'श्रीमद्भागवत पुराण' के दशम स्कंध में भी वर्षा-ऋतु का सुंदर वर्णन प्राप्त होता है-

"मेघागमोत्सवा दृष्टाः प्रत्यनन्दन्त खगाः ।
गृहेषु प्राप्ता निर्विण्णा यथाच्युतजनागमे ॥"[2]

बादलों के आगमन से मोरों का रोम-रोम खिल उठता है। वे नृत्य के माध्यम से आनंदोत्सव मनाते हैं, जैसे त्रिविध ताप से संतप्त भक्त भगवान के आगमन से प्रसन्न हो उठते हैं।

वर्षा-ऋतु के आगमन पर मानव-मन में नवीन उल्लास का संचार होता है, और उसी भाव की सशक्त अभिव्यक्ति कजरी में मिलती है। भाद्रपद मास के कृष्ण पक्ष की तृतीया को 'कज्जली व्रत' पर्व मनाया जाता है। इस दिन नवविवाहित स्त्रियाँ नए वस्त्राभूषण धारण कर कजली देवी की पूजा करती हैं तथा अपने भाइयों को जई बाँधने हेतु देती हैं। कजली पर्व के अवसर पर रात्रि भर जागरण किया जाता है और कजरी गीतों का गायन होता है, जिसे 'रतजगा' भी कहा जाता है।[3] सरस सावन, हरियाली और रिमझिम फुहार-इन सभी का सजीव चित्रण कजरी गीतों में प्रत्यक्ष देखने को मिलता है। कजरी की उत्पत्ति के संबंध में कई मत प्रचलित हैं, जिनमें प्रमुख निम्नलिखित हैं-

1. कजरी का नामकरण श्रावण मास में छाए काजल-सदृश काले बादलों की कालिमा के कारण हुआ। 'काजल' शब्द 'कज्जल' का अपभ्रंश है, जिससे 'कज्जली' और आगे चलकर 'कजरी' शब्द प्रचलित हुआ।
2. भारतेन्दु हरिश्चंद्र के अनुसार दादू राय के राज्य में 'कजली' नामक वन था, उसी के नाम पर यह गीत कजली कहलाया।
3. श्रावण-भाद्रपद मास के शुक्ल पक्ष की तीज को 'कजली तीज' कहा जाता है; इसी पर्व से कजरी की उत्पत्ति मानी जाती है। 'मार्कण्डेय पुराण' तथा काशी के स्वामी देवतीर्थ कजरी पर्व का संबंध विन्ध्याचल देवी से जोड़ते हैं।
4. 'आल्हाखंड' में कजरी के खेल का वर्णन मिलता है, जिससे अनुमान होता है कि बारहवीं शताब्दी में कजरी गीत अथवा खेल प्रचलन में था।

कजली अथवा कजरी का संबंध धार्मिक एवं सामाजिक पर्वों से गहराई से जुड़ा हुआ है। कजरी गीतों की प्रथम रचना किसने की, यह निश्चित रूप से कहना कठिन है। किंतु लगभग डेढ़ सौ वर्ष पूर्व आंचलिक भाषा के संत कवियों, विशेषकर लक्ष्मी सखी की रचनाओं में कजरी गीत उपलब्ध होते हैं। भारतेन्दु युग को कजरी का स्वर्णिम काल माना जाता है। इसी काल में कजरी को लोकजीवन और संगीत जगत में प्रतिष्ठित स्थान प्राप्त हुआ। इस युग में अन्य कवियों ने कजरी को साहित्यिक गरिमा प्रदान की। इनमें अंबिकादत्त व्यास, बदरीनारायण चौधरी प्रेमधन आदि उल्लेखनीय हैं। शैली और आंचलिकता के आधार पर कजरी गायन के तीन प्रमुख रूप माने जाते हैं-

1. भोजपुरी कजरी
2. बनारसी कजरी
3. मिर्जापुरी कजरी

अधिकांश कजरी गीत मिर्जापुर और चुनार की क्षेत्रीय भाषाओं में रचे गए हैं। भोजपुरी क्षेत्र (विशेषतः छपरा) की कजरी प्रायः मिर्जापुर की कजरी का अनुकरण मानी जाती है। कजरी गीतों के विकास का प्रमुख श्रेय मिर्जापुर को जाता है। उत्तर प्रदेश में कजरी की दो प्रमुख शैलियाँ प्रचलित हैं- एक ग़ज़ल शैली के अनुरूप, जिसे कजरी दंगलों में गाया जाता है; दूसरी 'ढुनमुनियाँ' शैली, जिसमें महिलाएँ वृत्त बनाकर ताल देती हुई, झुक-झुक कर गाती हैं। भाषाविद् डॉ. आर. एन. तिवारी ने कजली को दस खंडों में विभाजित किया है। इनके अंतर्गत ढुनमुनियाँ, घुमरूइया, चरगुनिया, रूपगुनिया, रसपुनिया, डहकनिया, कमधुनिया, तनतनिया तथा देशदुनिया जैसे रूप

सम्मिलित हैं।[4] कजरी गीतों में घूमते-फिरते जीवन, मार्ग-यात्रा, रूप-सौंदर्य, संयोग-वियोग, उमंग-उत्साह, खेतों में श्रम, प्रश्नोत्तर शैली तथा विविध सामाजिक विषयों का सजीव चित्रण मिलता है।

कजरी का वर्ण्य-विषय

कजरी का वर्ण्य-विषय मुख्यतः प्रेम है। इसके अंतर्गत श्रृंगार रस के संयोग तथा वियोग-दोनों पक्षों की सजीव झाँकी मिलती है। इन गीतों में पति-पत्नी के आचरण एवं व्यवहार का उल्लेख प्राप्त होता है। दम्पत्ति-परिहास, पीहर जाने का अनुरोध, प्रणय-निवेदन, बादलों के घिर आने के कारण कजरी न खेल पाने की विवशता की व्यथा आदि कजरी के प्रमुख विषय हैं। इसके अतिरिक्त भाई-बहन का स्नेह, सामाजिक प्रसंग तथा धार्मिक विषय, जैसे-श्रीकृष्ण का जीवन-चरित्र, देवी-देवताओं का वर्णन भी कजरी गीतों के अत्यंत मनभावन विषय हैं। कजरी गीतों में भावप्रवणता के साथ-साथ वर्णनात्मकता भी मिलती है। मेघों की घनघोर फुहारों से लेकर मृदु रिमझिम बूंदों तक, कोयल की कूक, पपीहे की पुकार, मोर का शोर, दामिनी की चमक और घन-घटाओं की गरज, ये सभी प्रिय-मिलन की कामना के लिए उद्दीपन का कार्य करते हैं। वर्ण्य-विषय की दृष्टि से इन गीतों में सामाजिक आदर्श, इष्ट-संयोग, मिलन और विरह का अत्यंत आकर्षक चित्रण मिलता है। इन गीतों में आंचलिक संस्कृतियों का स्पष्ट प्रभाव दृष्टिगोचर होता है तथा वर्णन में स्थानीय परिस्थितियों की छाप भी स्पष्ट दिखाई देती है।

कजरी दंगल

मिर्जापुर और बनारस के अखाड़े तथा कजरी मेले उत्तर प्रदेश, भोजपुर, बुंदेलखंड आदि क्षेत्रों में विशेष रूप से प्रसिद्ध रहे हैं। बनारस और मिर्जापुर की कजरी की विशेषता का वर्णन एक कजरी गीत में इस प्रकार मिलता है-

"हरि हरि मिर्जापुर ले काशी गुलजारा ए हरी,

मिर्जापुर में फूले रामा बेलिया रे चमेलिया।

हरि हरि काशीजी में फूलेला हजारा ए हरी,

मिर्जापुर में बहे रामा नदिया से नलवा,

हरि हरि काशीजी में बहे गंगधारा ए हरी।"[5]

इन क्षेत्रों में कजरी गीतों की ऐसी प्रतिष्ठा थी कि वे सड़कों से चौराहों तक, मेलों और गोष्ठियों से लेकर रईसों की महफिलों तक गाए जाते थे। भारतेन्दु हरिश्चंद्र का काल कजरी गीतों का स्वर्णिम युग माना जाता है। उस समय कजरी को साहित्य, संगीत और लोकजीवन में उच्च स्थान प्राप्त था। विभिन्न स्थानों पर कजरी दंगल, कजरी मेले और महफिलों का आयोजन होता था। रात-भर श्रोता कजरी गीतों का आनंद लेते थे। मिर्जापुर के कजरी मेलों में विशाल जनसैलाब उमड़ पड़ता था। सर्वाधिक जन-हलचल विन्ध्याचल के कजरी मेले में देखने को मिलती थी।

सार्वजनिक कजरी मेलों और दंगलों के अतिरिक्त मठों, मंदिरों तथा रईसों के बाग-बगीचों में आयोजित कजरी उत्सवों का अपना अलग ही रंग होता था। जिस बाग में अधिक झूले लगाए जाते थे, उसे उतना ही अधिक समृद्ध माना जाता था। इन उत्सवों में भाग लेने वाली गायिकाओं के लिए धानी रंग की साड़ी और गोटे लगे ब्लाउज की व्यवस्था की जाती थी, जिन्हें पहनकर वे झूले पर बैठकर गायन करती थीं। बनारस और मिर्जापुर में आषाढ़ से लेकर आश्विन तक यह गायन-परंपरा चलती रहती थी।

कजरी के प्रमुख अखाड़े

कुछ विद्वानों ने कजरी दंगल करने वाले अखाड़ों और घरानों का वर्णन इस प्रकार किया है-

1. जहाँगीर का अखाड़ा

यह कजरी का एक प्रसिद्ध अखाड़ा था। कहा जाता है कि इस अखाड़े ने डंडा, पदक और धन जीतकर अपनी प्रसिद्धि प्राप्त की। इन दंगलों में प्रश्न-उत्तर की परंपरा थी। एक गौनहारिन द्वारा पूछा गया प्रश्न-

"बहे पुरवइया सावनवाँ का लहरा,

आजा मोरे बालमवाँ।

इसके उत्तर में श्यामलाल ने कहा-

तोहरे दुआरिया मैं कैसे आऊँ,

सिपहिया का पहरा रे बालमवाँ।"[6]

शेख वफ्फ़ात द्वारा प्रतिष्ठित इस अखाड़े की परंपरा के साथ-साथ बनारसी और मिर्जापुरी धुनों में निर्गुण, चेतावनी और पचरा देवी गीत भी प्रसिद्ध हुए। इस परंपरा को आगे बढ़ाने वालों में जगन्नाथ महाराज, मुरलीधर मराल, रामदुलारे सिंह, बद्रीनाथ तिवारी, बैजनाथ और विश्वनाथ आदि प्रमुख हैं।

2. संत कल्लूषाह का अखाड़ा

कजरी गीतों में निर्गुण, ऐतिहासिक और श्रृंगार रस प्रधान कजरियों के लिए संत कल्लूषाह और उनके शिष्य प्रसिद्ध थे। उनकी शिष्य-परंपरा में बाबूलाल, सुकराती, पल्टू और महादेव ने इस अखाड़े को विशेष प्रतिष्ठा प्रदान की। सीखड़ ग्राम में गायकों की परंपरा 'सीखड़ अखाड़ा' के नाम से प्रसिद्ध हुई। 'अहरौरा' अखाड़े के गायक बनारसी रंग में कजरी गाते थे। रॉबर्ट्सगंज अखाड़ा, अहरौरा की शाखा के रूप में जाना जाता था।[7] मिर्जापुर में कजरी के अवसर पर रतजगा किया जाता है। ढोलक की थाप के साथ कजरी के स्वर वातावरण को गुंजायमान कर देते हैं। विभिन्न क्षेत्रों में कलाकारों के बसने से कजरी की अनेक परंपराएँ विकसित हुईं। यद्यपि कजरी की पारंपरिक शैली आज धीरे-धीरे कम हो रही है, फिर भी कजरी आज भी जीवंत लोकविधा बनी हुई है।

उपरोक्त घरानों के अतिरिक्त मोतिराम द्वारा स्थापित वैरागी अखाड़ा, रामप्रकाश पंडित का अखाड़ा, कतवारू का अखाड़ा, छविराम का अखाड़ा, भैरो घड़ीसाज का अखाड़ा, खुदाबख्श का अखाड़ा, नज़र का अखाड़ा, अलीबख्श का अखाड़ा और सरस्वती अखाड़ा भी विशेष रूप से प्रसिद्ध रहे हैं। आज कजरी के कलाकार अंतरराष्ट्रीय स्तर पर ख्याति प्राप्त कर चुके हैं। उपशास्त्रीय कजरी की सुप्रसिद्ध गायिकाओं में श्रीमती गिरिजा देवी, श्रीमती शोभा गुर्टू, श्रीमती मालिनी अवस्थी आदि के नाम उल्लेखनीय हैं। लोकसंगीत की कजरी गायिकाओं में श्रीमती शारदा सिन्हा और श्रीमती मालिनी अवस्थी अग्रगण्य हैं-

'कइसे खेले जइबु सावन में कजरीया,

बदरिया घिर आई ननदी।'

निष्कर्ष

कजरी भारतीय लोकसंगीत की एक अत्यंत समृद्ध, भावप्रवण और सांस्कृतिक रूप से महत्त्वपूर्ण गायन-परंपरा है,

जो विशेष रूप से वर्षा-ऋतु से जुड़ी हुई है। यह केवल एक लोकगीत शैली नहीं, बल्कि ग्रामीण जीवन, प्रकृति और मानवीय संवेदनाओं की सजीव अभिव्यक्ति है। कजरी के गीतों में प्रेम, श्रृंगार, विरह, दांपत्य जीवन, भाई-बहन का स्नेह, सामाजिक मर्यादाएँ तथा धार्मिक आस्थाएँ एक साथ समाहित दिखाई देती हैं। वर्षा, मेघ, हरियाली, कोयल, पपीहा और मोर जैसे प्राकृतिक उपादान कजरी को सौंदर्यात्मक गहराई प्रदान करते हैं और भावों के उद्दीपन का कार्य करते हैं। कजरी दंगल, अखाड़े और मेले इसकी सामाजिक स्वीकृति और लोकप्रियता के प्रमाण हैं, जिनके माध्यम से यह लोक से शास्त्र की ओर अग्रसर हुई। बनारस और मिर्जापुर जैसे क्षेत्रों ने इसके विकास में विशेष योगदान दिया है। समय के साथ कजरी ने उपशास्त्रीय स्वरूप भी ग्रहण किया और अनेक महान कलाकारों के माध्यम से राष्ट्रीय एवं अंतरराष्ट्रीय पहचान प्राप्त की। यद्यपि आधुनिकता के प्रभाव से इसकी पारंपरिक शैलियाँ कुछ हद तक क्षीण हुई हैं, फिर भी कजरी आज भी जीवंत लोकविधा के रूप में विद्यमान है। अतः इस सांस्कृतिक धरोहर के संरक्षण, संवर्धन और नई पीढ़ी तक इसके हस्तांतरण की नितांत आवश्यकता है।

संदर्भ सूची

1. जैन, श्रीमती शांति - ऋतुगीत: स्वर और स्वरूप, पृष्ठ 55
2. वही - पृष्ठ 56
3. गर्ग, लक्ष्मीनारायण - निबंध संगीत, संगीत कार्यालय, हाथरस (2012), पृष्ठ 97
4. दैनिक जागरण - 17 जुलाई 2011, पृष्ठ 8
5. जैन, श्रीमती शांति - लोकगीतों के संदर्भ और आयाम, विश्वविद्यालय प्रकाशन (1999), पृष्ठ 203
6. वही - पृष्ठ 204
7. जैन, श्रीमती शांति - ऋतुगीत: स्वर और स्वरूप, पृष्ठ 81